प्रकाशन तिथि : 26 अप्रैल 2015, मूल्य 2 रुपये, वर्ष 33, अंक 10, कुल पृष्ठ 36

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जिनमंदिर, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई का प्रस्तावित चित्र
(दिनांक १७ से २२ मई तक होने वाले पंचकल्याणक के अवसर पर)

वीतराग-विज्ञान (382)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :

डॉ. संजीवकुमार गोधा

प्रकाशक एवं मुद्रक :

ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन :(0141)2705581, 2707458

फैक्स : 2704127

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	2 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7200
मराठी	:	2000
कन्नड़	:	1000
कुल	**:**	**10200**

निज परमात्मा ही उपादेय

कारणपरमात्मा ही वास्तव में आत्मा है। निर्णय करती है पर्याय; नित्य का निर्णय करती है अनित्य पर्याय; परन्तु उसका विषय है कारणपरमात्मा, इसलिये वही वास्तव में आत्मा है। पर्याय को अभूतार्थ कहकर-व्यवहार कहकर अनात्मा कहा है। कारणपरमात्मा प्रभु उपादेय है, अति आसन्नभव्य जीवों को ऐसे निज कारणपरमात्मा के सिवाय अन्य कोई उपादेय नहीं है। पर्याय या राग या निमित्त कोई उपादेय नहीं है। निज परमात्मा को जिस पर्याय ने उपादेय किया, उस पर्याय को आत्मा नहीं करता। अमितगति आचार्यदेव के 'योगसार' में आता है कि पर्याय का दाता द्रव्य नहीं है, क्योंकि पर्याय सत् है और सत् को किसी का हेतु नहीं है। इसलिये सम्यग्दर्शन की पर्याय स्व का आश्रय लेती है वह उसके अपने सामर्थ्य से है। आत्मा का जैसा सामर्थ्य है, वैसा श्रद्धा-ज्ञान में आता है; परन्तु वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय के अपने सामर्थ्य से है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये निज परमात्मा के सिवाय अन्य कुछ भी उपादेय नहीं है। 228

- द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, पृष्ठ 52

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 33 (वीर नि. संवत् - 2541) 382 अंक : 10

सो गुरुदेव हमारा है...

सो गुरुदेव हमारा है साधो।

जोग अगनि में जो थिर राखे, यह चित चंचल पारा है।।

करन कुरंग खरे मदमाते, जप तप खेत उजारा है।

संजम डोर जोर वश कीने, ऐसा ज्ञान विचारा है।।

सो गुरुदेव हमारा है... ।।1।।

जा लक्ष्मी को सब जग चाहै, दाह हुआ जग सारा है।

सो प्रभु के चरनन की चेरी, देखो अचरज भारा है।।

सो गुरुदेव हमारा है... ।।2।।

लोभ सरपके कहर, जहरकी, लहर गई दुख टारा है।

'भूधर' ता रिखका शिख हूजे, तब कछु होय सुधारा है।।

सो गुरुदेव हमारा है... ।।3।।

- कविवर पण्डित भूधरदासजी

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयन्ती के अवसर पर उनके प्रवचनों में से महत्वपूर्ण 125 अंशों को पाठकों के लाभार्थ यहाँ क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है।

(119) आत्मा का स्वरूप क्या है ? उसका निर्णय करने की धुन लगना चाहिए। प्रबल युक्तियों से निर्णय करने की लगन लगना चाहिए। सभी पहलुओं से निर्णय न हो तब तक चैन न पड़े। ऊपर-ऊपर से ही विचार करके छोड़ नहीं देना चाहिए। अन्दर मंथन करके ऐसा दृढ निर्णय करना चाहिए कि उसमें शंका न हो। ऐसा निर्णय करने से वीर्य का झुकाव स्व की ओर होता है। अन्तर में पुरुषार्थ की दिशा सूझ जाने पर मार्ग की उलझन नहीं होती, उसकी लगन ही उसका मार्ग स्पष्ट कर देती है।

(120) दु:ख यदि मूल स्वभाव हो तो टल नहीं सकता। सुख यदि मूल स्वभाव न हो तो मिल नहीं सकता। अहो ! ऐसा सुख स्वभाव सुनकर उसका विचार-मनन करे, उसकी महिमा लाकर अन्दर उतरे तो जगत की कोई चिन्ता या आकुलता कहाँ है ? सुख में दूसरी चिन्ता कैसी ? अपने सुखसमुद्र में डुबकी लगा, तो तुझे तृप्ति होगी और आकुलता मिट जायेगी।

(121) अरे ! रुचि के अभाव में अपना स्वभाव ही कठिन लगता है और बाह्य विषयों की रुचि है, इसलिए वे सरल लगते हैं - यह तो जीव की रुचि का दोष है। रुचि करे तो आत्मा को समझना सरल है। इस काल में स्वरूप का अनुभव कठिन है - ऐसा मानकर जो उसकी रुचि छोड़ देता है, वह बहिरात्मा है। जिसे जिसकी रुचि और जरूरत लगती है; उसकी प्राप्ति हेतु उसका प्रयत्न उधर ढलता ही है।

(122) जिसे जिस वस्तु की रुचि होती है, वह उस वस्तु की मर्यादा नहीं बाँधता, उसकी हठ नहीं होती। जिसे पैसे की रुचि होती है, वह लाख दो लाख अथवा करोड़ इत्यादि की मर्यादा नहीं बाँधता; किन्तु जितना मिले, उतना ले लेने की उसकी भावना होती है। उसी प्रकार जिसे आत्मा की रुचि होती है, वह आत्मा के हित के लिए कोई

मर्यादा नहीं बांधता; आत्मा के स्वभाव की रुचि होने पर उसमें कोई मर्यादा नहीं हो सकती, किन्तु काल और पुरुषार्थ की मर्यादा को तोड़कर अमर्यादित पुरुषार्थ के द्वारा वह सम्पूर्ण स्वरूप को प्राप्त करता ही है।

(123) भाई ! ऐसा अमूल्य मनुष्य-जीवन पाकर यों ही चला जावे, उसमें तू सर्वज्ञदेव की पहिचान न करे, सम्यग्दर्शन का सेवन न करे, शास्त्र-स्वाध्याय न करे, धर्मात्मा की सेवा न करे और कषायों की मन्दता न करे - तो इस जीवन में तूने क्या किया ? आत्मा को भूलकर संसार में भटकते अनन्तकाल बीत गया; उसमें महा मूल्यवान यह मनुष्य भव और धर्म का ऐसा दुर्लभ योग मिला, तो अब परमात्मा के समान जो तेरा स्वभाव है, उसे दृष्टि में लेकर मोक्ष का साधन कर।

(124) आ हा हा ! जो पर्यायें हो चुकीं और होने वाली हैं - ऐसी भूत-भविष्य की पर्यायों को प्रत्यक्ष जाने, उस ज्ञान की दिव्यता का क्या कहना ? केवली भगवान भूत-भविष्य की पर्यायों को द्रव्य में योग्यतारूप जानते हैं - ऐसा नहीं है, किन्तु उन सभी पर्यायों को वर्तमानवत् प्रत्यक्ष जानते हैं, यही सर्वज्ञ के ज्ञान की दिव्यता है। भूत-भविष्य की अविद्यमान पर्यायें केवलज्ञान में विद्यमान ही हैं। ओ हो ! एकसमय की केवलज्ञान पर्याय की ऐसी विस्मयता और आश्चर्यता है तो पूरे द्रव्य की सामर्थ्य कितनी विस्मयपूर्ण और आश्चर्यजनक होगी - उसका क्या कहना।

(125) जैनधर्म का चरणानुयोग भी अलौकिक है। द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग का मेल होता है। दृष्टि सुधरे और परिणाम चाहे जैसे हुआ करे - ऐसा नहीं होता। अध्यात्म की दृष्टि हो वहाँ देव-गुरु की भक्ति, दान, साधर्मी के प्रति वात्सल्य आदि भाव सहज आते ही हैं। श्रावक के अन्तर में मुनिदशा की प्रीति है अर्थात् हमेशा त्याग की ओर लक्ष्य रहा करता है और मुनिराज को देखते ही भक्ति से उसका रोम-रोम उल्लसित हो जाता है। भाई ! ऐसा मनुष्य अवतार मिला है तो मोक्षमार्ग साधकर इसे सफल कर।

- वीतराग-विज्ञान : अप्रैल 1985, पृष्ठ 17-19

सम्पादकीय

तत्त्वार्थमणिप्रदीप

(आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका)

(गतांक से आगे....)

पुद्गल द्रव्य

उपकारों के प्रकरण में बार-बार पुद्गल द्रव्य की चर्चा हुई है। अत: अब **पुद्गल द्रव्य के स्वरूप पर विचार करते हैं –**

स्पर्शरसगंधवर्णवन्तःपुद्गलाः ।।२३।।

पुद्गल द्रव्य; स्पर्श, रस, गंध और वर्णवाला है।

जो स्पर्शन इन्द्रिय के माध्यम से छूकर जाना जाता है; उसे **पुद्गल द्रव्य का स्पर्श गुण** कहते हैं। वह स्पर्श आठ प्रकार का है –

१. स्निग्ध, २. रूक्ष, ३. शीत, ४. उष्ण, ५. कोमल, ६. कठोर, ७. हल्का और ८. भारी।

स्पर्श के इन आठ प्रकारों को हम निम्नांकित चार युगलों में भी प्रस्तुत कर सकते हैं –

१. रूखा-चिकना, २. शीत-उष्ण, ३. कोमल-कठोर और ४. हलका-भारी।

जो रसना इन्द्रिय के माध्यम से चखकर जाना जाता है; उसे **पुद्गल द्रव्य का रस गुण** कहते हैं। वह रस पाँच प्रकार का है –

१. खट्टा, २. मीठा, ३. कडवा, ४. कषायला और ५. चरपरा।

जो घ्राण इन्द्रिय के माध्यम से सूंघकर जाना जाता है; उसे **पुद्गल द्रव्य का गंध गुण** कहते हैं। वह गंध दो प्रकार की है –

१. सुगन्ध और २. दुर्गन्ध।

जो चक्षु (आँख) इन्द्रिय के माध्यम से देखकर जाना जाता है; उसे **पुद्गल द्रव्य का वर्ण (रूप) गुण** कहते हैं। वह वर्ण पाँच प्रकार का है–

१. काला, २. नीला, ३. लाल, ४. पीला और ५. सफेद।

इसप्रकार पुद्गल द्रव्य के संक्षेप में चार और विस्तार से बीस प्रकार हैं।।२३।।

पुद्गल द्रव्य की पर्यायें

पुद्गल द्रव्य के गुणों की चर्चा के उपरान्त अब उसकी पर्यायों की बात करते हैं–

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ।।२४।।

पुद्गल द्रव्य; १. शब्द, २. बन्ध, ३. सूक्ष्मपना, ४. स्थूलपना, ५. संस्थान, ६. भेद, ७. तम, ८. छाया, ९. आतप और १०. उद्योत – इन पर्यायोंवाला है।

तात्पर्य यह है कि ये सब पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं।

१. शब्द दो प्रकार के होते हैं –

(क) भाषारूप और (ख) अभाषारूप।

(क) भाषारूप शब्द भी दो प्रकार के हैं – अक्षररूप और अनक्षररूप।

मनुष्यों के व्यवहार में आनेवाली अनेक बोलियाँ **अक्षररूप भाषात्मक शब्द** हैं और पशु-पक्षियों वगैरह की टें-टें-में-में **अनक्षररूप भाषात्मक शब्द** हैं।

(ख) अभाषारूप शब्द भी दो प्रकार का है – प्रायोगिक और वैस्रसिक (स्वाभाविक)।

जो पुरुष के प्रयत्न से पैदा होते हैं, उन्हें **प्रायोगिक अभाषारूप शब्द** कहते हैं और जो बिना पुरुष के प्रयत्न के मेघ आदि की गर्जना से उत्पन्न होते हैं, उन्हें **वैस्रसिक (स्वाभाविक) अभाषारूप शब्द** कहते हैं।

२. बन्ध भी दो प्रकार का है – **(क)** वैस्रसिक और **(ख)** प्रायोगिक।

(क) जो बन्ध बिना पुरुष के प्रयत्न के स्वयं होता है, उसे **वैस्रसिक बंध** कहते हैं। जैसे **पुद्गलों के स्निग्ध और रूक्ष गुण के निमित्त से स्वयं ही बादल, बिजली और इन्द्रधनुष वगैरह बन जाते हैं।**

(ख) पुरुष के प्रयत्न से होनेवाला बन्ध **प्रायोगिक बंध** है। उसके भी दो भेद हैं – **एक अजीव का बन्ध,** जैसे लकड़ी और लाख का बन्ध।

दूसरा **जीव और अजीव का बन्ध,** जैसे आत्मा से कर्म और नोकर्म का बन्ध।

३. सूक्ष्मपना दो प्रकार का है – **एक सबसे सूक्ष्म,** जैसे परमाणु।

दूसरा **आपेक्षिक सूक्ष्म,** जैसे सेव से सूक्ष्म आंवला और आंवले से सूक्ष्म बेर।

४. स्थूलपना भी दो प्रकार का है – एक सबसे अधिक स्थूल, जैसे समस्त जगत में व्याप्त महास्कन्ध।

दूसरा **आपेक्षिक स्थूल,** जैसे बेर से स्थूल आंवला और आंवला से स्थूल सेव।

५. संस्थान यानी आकार भी दो तरह का है – **इत्थं लक्षण संस्थान** और **अनित्थं लक्षण संस्थान।**

गोल, चौकोर, लम्बा, चौड़ा आदि आकारों को 'इत्थं लक्षण संस्थान' कहते हैं; क्योंकि उन्हें कहा जा सकता है और जिस आकार को कह सकना शक्य न हो, जैसे बादलों में अनेक प्रकार के आकार बनते-बिगड़ते रहते हैं, उन्हें 'अनित्थं लक्षण संस्थान' कहते हैं।

६. भेद छह प्रकार का है – १. उत्कर, २. चूर्ण, ३. खण्ड, ४. चूर्णिका, ५. प्रतर, ६. अणुचटन।

आरा से लकड़ी चीरने पर जो बुरादा निकलता है, उसका नाम **उत्कर** है।

जौ, गेहूँ आदि अनाजों के आटे को **चूर्ण** कहते हैं।

घड़े के टुकड़ों को **खण्ड** कहते हैं।

उड़द, मूँग वगैरह की दाल के छिलकों को **चूर्णिका** कहते हैं।

मेघ वगैरह के पटल का नाम **प्रतर** है।

लोहे को गर्म करके पीटने पर जो फुलिंगे निकलते हैं, उन्हें **अणु-चटन** कहते हैं।

७. अन्धकार को **तम** कहते हैं।

८. छाया दो प्रकार की होती है – १. तद्वर्णपरिणत, २. प्रतिबिम्ब।

१. तद्वर्णपरिणत – जिस वस्तु की छाया हो, उसका रूप रंग ज्यों का त्यों उसमें आ जाये, जैसे **दर्पण में मुख का रूप रंग वगैरह ज्यों का त्यों आ जाता है।**

२. प्रतिबिम्ब – प्रतिबिम्ब मात्र, जैसे **धूप में खड़े होने से छाया मात्र पड़ जाती है।**

९. सूर्य के प्रकाश को आतप या **धूप** कहते हैं।

१०. चन्द्रमा वगैरह के शीतल प्रकाश को **उद्योत** कहते हैं।

– ये सब पुद्गल की ही पर्यायें हैं।

ध्यान रहे **अणु पुद्गल द्रव्य** है और स्कन्ध पुद्गल द्रव्य की समान- जाति **द्रव्यपर्याय** है।

स्पर्श, रस, गंध और वर्ण – ये पुद्गल द्रव्य के गुण हैं और शब्द, बंध और सूक्ष्मत्व आदि स्कन्धरूप पर्यायों के प्रकार हैं।।२४।।

पुद्गल के भेद

पुद्गल द्रव्य के गुण और पर्यायों की चर्चा के उपरान्त अब उसके भेदों की चर्चा करते हैं –

अणवः स्कन्धाश्च ।।२५।।

पुद्गल के दो भेद हैं – १. अणु और २. स्कन्ध।

१. अणु या परमाणु – पुद्गल के सबसे छोटे से छोटे भाग को अणु या परमाणु कहते हैं। **यह परमाणु ही मूलतः पुद्गल द्रव्य है।** यह एक प्रदेशी ही होता है। **एक प्रदेशी अणु को अप्रदेशी भी कहते हैं।**

एक पुद्गल परमाणु में; पाँच रसों में से **कोई एक रस,** पाँच रंगों में से **कोई एक रंग (वर्ण),** दो गंधों में से **कोई एक गंध** और आठ स्पर्शों में से **कोई दो अविरोधी स्पर्श** अर्थात् शीत और उष्ण में से कोई एक स्पर्श तथा स्निग्ध और रूक्ष में से कोई एक स्पर्श – इसप्रकार **अणु के मूलतः पाँच गुण होते हैं।**

२. स्कन्ध – अनेक पुद्गल परमाणुओं के पिंड को स्कन्ध कहते हैं। ये स्कन्ध एक से अधिक दो परमाणुओं से लेकर अनन्त परमाणुओं के होते हैं, हो सकते हैं।

वस्तुतः ये स्कन्ध पुद्गल द्रव्य नहीं, पुद्गल द्रव्य की पर्याये हैं। मूल पुद्गल द्रव्य तो अणु या परमाणु ही है। यद्यपि अणु भी रूपी है; तथापि अत्यन्त सूक्ष्म होने से वह चक्षु इन्द्रिय से दिखाई नहीं देता।

नियमसार में परमाणु की परिभाषा इसप्रकार दी गई है –

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंदियग्गेज्झं ।
अविभागी जं दव्वं परमाणू तं वियाणाहि ।।२६।।
इन्द्रियों से ना ग्रहे अविभागि जो परमाणु है।
वह स्वयं ही है आदि एवं स्वयं ही मध्यान्त है ।।२६।।

आदि, मध्य और अन्त से रहित, इन्द्रियों से अग्राह्य और जिसका विभाग करना संभव न हो – ऐसा अविभागी पुद्गल परमाणु, द्रव्य है ।।२५।।

अणु और स्कन्धों की उत्पत्ति का नियम

अब इन अणु-स्कंधरूप पुद्गलों की उत्पत्ति का नियम बताते हैं–

भेदसंघातेभ्यः उत्पद्यन्ते ।।२६।।

भेदादणुः ।।२७।।

भेद से, संघात से और भेद-संघात से स्कन्धों की उत्पत्ति होती है।

अणु की उत्पत्ति स्कन्धों के भेद (टूटने) से होती है, संघात से नहीं होती।

स्कन्धों के टूटने को **भेद** कहते हैं। भिन्न-भिन्न परमाणुओं या स्कन्धों के मिलकर एक हो जाने को **संघात** कहते हैं।

दो परमाणुओं के संघात से दो प्रदेशवाला स्कन्ध उत्पन्न होता है। दो प्रदेशवाले एक स्कन्ध और एक अणु के संघात से या तीन अणुओं के संघात से **तीन प्रदेशवाला स्कन्ध उत्पन्न होता है।**

इसीप्रकार दो-दो प्रदेशवाले दो स्कन्धों के संघात से या तीन प्रदेश वाले एक स्कन्ध और एक अणु के संघात से या चार अणुओं के संघात से **चार प्रदेशवाला स्कन्ध उत्पन्न होता है।**

इसप्रकार संख्यात, असंख्यात, अनन्त और अनंतानंत अणुओं और स्कन्धों के संघात से; उतने-उतने प्रदेशोंवाले स्कन्ध उत्पन्न होते हैं।

इसीप्रकार संख्यात आदि परमाणुओं के स्कन्धों के भेद से **दो प्रदेश आदि के स्कन्ध उत्पन्न होते हैं।**

किन्हीं के भेद से और किन्हीं के संघात से यानि भेद-संघात – दोनों से भी

स्कन्धों की उत्पत्ति होती है।

इसप्रकार यह सुनिश्चित हुआ कि स्कन्धों की उत्पत्ति तो संघात से, भेद से और भेद-संघात – इन तीनों से होती है; परन्तु **अणु की उत्पत्ति तो भेद से ही होती है;** संघात या भेद-संघात से नहीं ।।२६-२७।।

चाक्षुष स्कन्ध

वर्णवाला होने पर भी, रूपी होने पर भी; अत्यन्त सूक्ष्म होने से, अणु तो चक्षु इन्द्रिय के माध्यम से देखने में आता ही नहीं है; पर अनंत परमाणुओं के पिण्ड होने पर भी अनेक स्कंध चक्षु इन्द्रिय से देखने में नहीं आते।

जो स्कंध चक्षु इन्द्रिय के माध्यम से देखने में आवें; उन स्कंधों को **चाक्षुष स्कंध** कहते हैं और जो स्कंध चक्षु इन्द्रिय के माध्यम से देखने में नहीं आवें; उन स्कंधों को **अचाक्षुष स्कंध** कहते हैं।

यहाँ प्रश्न यह है कि **अचाक्षुष स्कन्ध चाक्षुष कैसे बनते हैं?**

इस प्रश्न का उत्तर अगले सूत्र में दिया गया है; जो इसप्रकार है –

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ।।२८।।

भेद और संघात दोनों से स्कन्ध, चाक्षुष बनता है अर्थात् चक्षु इन्द्रिय का विषय होता है।

वस्तुस्थिति यह है कि अनन्तानन्त परमाणुओं के समुदाय से निष्पन्न होकर भी कोई स्कंध **अचाक्षुष** होता है और कोई स्कन्ध **चाक्षुष** होता है।

औदारिक शरीररूप स्कंध चाक्षुष हैं और उससे अनंतगुणे परमाणु वाले कार्मण शरीररूप स्कंध चाक्षुष नहीं हैं।

बात यह है कि सूक्ष्म परिणमनवाले स्कन्ध का भेद होने पर भी कभी-कभी वह अपनी सूक्ष्मता नहीं छोड़ता; इसलिए उसमें अचाक्षुष पना ही बना रहता है।

वस्तुतः बात यह है कि अकेले भेद से स्कंध चाक्षुष नहीं होता; अपितु **भेद और संघात से स्कन्ध चाक्षुष बनता है।**

किसी एक स्कंध में भेद होने पर, जब उस स्कंध का किसी दूसरे स्कंध से संघात (संयोग) होता है तो उसमें स्थूलता की उत्पत्ति हो जाती है

और वह चाक्षुष हो जाता है।

इसप्रकार यह सुनिश्चित है कि एक सूक्ष्म स्कंध से भेद को प्राप्त कर जब वह सूक्ष्म स्कंध अन्य स्कंध से जुड़ता है तो वह स्थूल होकर चाक्षुष हो जाता है, चक्षु इन्द्रिय से जानने में आने लगता है।

ऑक्सीजन और हाइड्रोजन दो वायु हैं, दोनों नेत्र इन्द्रिय से अगोचर स्कन्ध हैं। दोनों के मिलाप होने पर नेत्रइन्द्रियगोचर जल हो जाता है।

इसलिए नेत्रइन्द्रियगोचर स्कन्ध होने के लिए, जिसमें मिलाप हो, वह स्कंध नेत्रइन्द्रियगोचर होना ही चाहिए – ऐसा नियम नहीं है और सूत्र में भी नेत्रइन्द्रियगोचर स्कन्ध चाहिए ही – ऐसा कथन नहीं है। सूत्र में सामान्य कथन है।

तात्पर्य यह है कि एक अचाक्षुष स्कन्ध से टूटकर कोई अचाक्षुष स्कंध दूसरे चाक्षुष स्कन्ध से मिले, तब तो वह स्कंध चाक्षुष हो ही जावेगा; पर यदि किसी अचाक्षुष स्कंध में भी मिले, तब भी चाक्षुष हो सकता है। नहीं भी हो – ऐसा भी हो सकता है।

यह वस्तुस्थिति जानने योग्य है। जानने में आ जावे, तब तो बहुत बढिया है ही; नहीं भी आवे तो अधिक विकल्प करने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इसके नहीं जान पाने से आपका मुक्तिमार्ग अवरुद्ध होनेवाला नहीं है॥२८॥

द्रव्य का लक्षण

पहले धर्मादिक द्रव्यों की चर्चा हुई है। अत: यह प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि आखिर द्रव्य है क्या, द्रव्य का लक्षण क्या है, द्रव्य किसे कहते हैं ?

उक्त प्रश्न का उत्तर आगामी सूत्रों में दिया जा रहा है –

सद्द्रव्यलक्षणम्॥२९॥

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्॥३०॥

जो सत् है, वह द्रव्य है। द्रव्य का लक्षण सत् है।

जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त है, वह सत् है।

तात्पर्य यह है कि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त सत् ही द्रव्य का लक्षण है। इसप्रकार 'द्रव्य' लक्ष्य है और 'उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त सत्' द्रव्य का लक्षण है।

स्वयं के स्वभाव (जाति) को छोड़े बिना नवीन अवस्था की प्राप्ति उत्पाद है, पूर्व अवस्था का त्याग व्यय है और अनादि पारिणामिक भावरूप अन्वय का बना रहना ध्रौव्य है।

कोयला जलकर राख हो गया। इसमें कोयलारूप पर्याय का व्यय हुआ, राखरूप पर्याय का उत्पाद और कोयला और राख – इन दोनों ही अवस्थाओं में पुद्गल द्रव्य समानरूप से बना रहा, कायम रहा – यही द्रव्य की नित्यता है, ध्रुवता है, ध्रौव्य है।

प्रतिसमय बदलकर भी कभी नहीं बदलना और कभी न बदलकर भी प्रतिसमय बदलते रहना प्रत्येक द्रव्य का मूल स्वभाव है।

कभी नहीं बदलना प्रत्येक वस्तु (द्रव्य) का द्रव्यस्वभाव है और प्रतिसमय बदलते रहना पर्यायस्वभाव है। नयों की भाषा में इसे इसप्रकार भी कह सकते हैं कि **प्रत्येक वस्तु (द्रव्य) द्रव्यार्थिकनय से कभी भी नहीं बदलती, पर पर्यायार्थिकनय से प्रतिसमय बदलती ही रहती है॥२९-३०॥**

नित्यता का लक्षण

इसी अध्याय के चौथे सूत्र में द्रव्यों को नित्य कहा था। अत: अब उक्त **नित्यता का स्वरूप स्पष्ट करते हैं –**

तद्भावाव्ययं नित्यम्॥३१॥

वस्तु (द्रव्य) का होना और उसका व्यय (अभाव) नहीं होना ही नित्यता है।

प्रत्येक द्रव्य निरन्तर कायम रहकर भी निरंतर बदलता रहता है और निरन्तर बदल कर भी निरन्तर कायम रहता है।

जिसप्रकार जीव निरन्तर अपने क्रमनियमित परिणामों में उत्पन्न होता हुआ भी अजीव नहीं होता; अजीव भी अपने क्रमनियमित परिणामों से उत्पन्न होता हुआ भी जीव नहीं होता; उसीप्रकार प्रत्येक द्रव्य अपने क्रमनियमित परिणामों से उत्पन्न होता हुआ भी कभी अन्य द्रव्य रूप नहीं होता, मूल से कभी नष्ट नहीं होता – यही उसकी नित्यता है।

जब हम किसी २५ वर्ष के नवयुवक को देखकर यह कहते हैं कि रे सुरेश ! तू

इतना बड़ा हो गया, इतना बदल गया। जब तू पाँच वर्ष का था, तब मैंने तुझे नंगा खेलते देखा है।

आपके इस कथन से यह बात अत्यन्त स्पष्ट है कि वह पाँच वर्ष का बालक पूरी तरह बदल गया है; फिर भी उसमें कुछ ऐसा है, जिसके कारण तुमने उसे पहिचान लिया।

तात्पर्य यह है कि बहुत कुछ बदलकर भी कुछ न कुछ ऐसा है, जो नहीं बदला है। तुम्हारे इस ज्ञान को ही प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। बस यही समझ लीजिए कि आपके इस प्रत्यभिज्ञानरूप ज्ञान के कारण को नित्यता कहते हैं।।३१।।

अर्पित और अनर्पित

यह तो अनुभवसिद्ध सत्य है कि प्रत्येक द्रव्य बदलकर भी नहीं बदलता है और नहीं बदलकर भी बदल जाता है।

इस महासत्य की सिद्धि **मुख्यता और गौणता की अपेक्षा होती है।**

यही बात आगामी सूत्र में कही जा रही है –

अर्पितानर्पितसिद्धेः ।।३२।।

मुख्य को अर्पित और गौण को अनर्पित कहते हैं। इस मुख्यता और गौणता की अपेक्षा ही एक वस्तु में परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले दो धर्मों का अस्तित्व सिद्ध होता है।

प्रत्येक द्रव्य अनन्त गुणों, परस्पर विरुद्ध प्रतीत होनेवाले अनन्त धर्मयुगलों का अखण्डपिण्ड है; अनन्त स्वभावों और अनन्त शक्तियों का संग्रहालय है।

यद्यपि ये गुण, धर्म युगल, स्वभाव और शक्तियाँ; प्रत्येक द्रव्य के स्वरूप में ही समाहित हैं, तद्रूप ही हैं, अभिन्न ही हैं; तथापि ये सब गुण, धर्म, स्वभाव और शक्तियाँ द्रव्य से कथंचित् (किसी अपेक्षा) पृथक् भी हैं।

यद्यपि ये सभी द्रव्यदृष्टि से, द्रव्यार्थिकनय से; द्रव्य में अभेद हैं, अखण्ड हैं, नित्य हैं, एक हैं; तथापि पर्यायदृष्टि से, पर्यायार्थिकनय से; भिन्न-भिन्न हैं, खण्ड-खण्ड हैं, अनित्य हैं और अनेक हैं तथा प्रमाण से भेदाभेदरूप हैं, खण्डाखण्डरूप हैं, नित्यानित्यरूप हैं और एकानेक रूप हैं।

उक्त अपेक्षाओं में से हम जिस अपेक्षा को समझना-समझाना चाहते हैं; वह अपेक्षा मुख्य होती है, अर्पित होती है और विवक्षित होती है; शेष अपेक्षायें गौण रहती हैं, अनर्पित रहती हैं, अविवक्षित रहती हैं। **विवक्षित, अर्पित और मुख्य – ये सब एकार्थवाची ही हैं।**

इसीप्रकार अविवक्षित, अनर्पित और गौण का भी एक ही अर्थ है।

इसप्रकार अर्पित और अनर्पित के प्रयोग से वस्तुस्वरूप की सिद्धि होती है, समझने-समझाने का प्रयोग होता है।

जिसप्रकार एक व्यक्ति अपने पिता की अपेक्षा पुत्र है, पुत्र की अपेक्षा पिता है; इसप्रकार वह पिता भी है और पुत्र भी है।

इसीप्रकार वही व्यक्ति अपने मामा की अपेक्षा भानजा है, भानजे की अपेक्षा मामा है; इसप्रकार वह मामा भी है और भानजा भी है।

इसप्रकार वह पिता, पुत्र, मामा, भानजा – सब कुछ एक साथ ही है।

इसीप्रकार द्रव्यार्थिकनय से प्रत्येक द्रव्य नित्य है, पर्यायार्थिकनय से अनित्य है और प्रमाण से नित्य भी है, अनित्य भी है – इसप्रकार नित्यानित्य है। इसप्रकार द्रव्य नित्य, अनित्य और नित्यानित्य – सबकुछ एक साथ ही है।

जब नयों का प्रयोग होता है तो उसमें दृढ़ता प्रदान करने के लिए **'ही'** लगाई जाती; पर जब प्रमाण का प्रयोग करते हैं तो अपरपक्ष की गौणरूप से स्वीकृति के लिए उसमें **'भी'** लगाई जाती है।

जैसे द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य नित्य ही है, पर्यायार्थिकनय से द्रव्य अनित्य ही है और प्रमाण से नित्य भी है, अनित्य भी है; नित्यानित्य है।

इसप्रकार विवक्षित (अर्पित) और अविवक्षित (अनर्पित) रूप से वस्तु का प्रतिपादन होता है, वस्तुस्वरूप समझा जाता है और वस्तुस्वरूप की सिद्धि होती है।।३२।।

स्कन्धरूप बंध का स्वरूप

पुद्गल द्रव्य के परमाणुओं का स्कन्धरूप बंध किसप्रकार होता है; अब यह

स्पष्ट करते हैं –

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ।।३३।।

न जघन्यगुणानाम् ।।३४।।

गुणसाम्ये सदृशानाम् ।।३५।।

द्व्यधिकादिगुणानां तु ।।३६।।

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ।।३७।।

स्निग्धत्व और रूक्षत्व से पुद्गलों का परस्पर बंध होता है।

पर जघन्यगुणवाले पुद्गलों का बंध नहीं होता।

इसीप्रकार गुणों की समानता होने पर तुल्यजातिवालों का बंध नहीं होता।

दो अधिक आदि शक्ति के अंशवालों का तो बंध होता है।

बंध होते समय दो अधिक गुणवाला परिणमन करानेवाला होता है।

स्निग्धत्व अर्थात् चिकनापन और रूक्षत्व अर्थात् रूखापन।

विगत सूत्रों में पुद्गल द्रव्य के मूलत: चार गुणों की एवं विस्तृत रूप से बीस गुणों की चर्चा आई है। उन बीस गुणों में स्पर्श गुण के आठ प्रकारों में **मात्र स्निग्ध और रूक्ष – ये दो गुण ही बन्ध के कारण हैं।** शेष अठारह गुणों के कारण बंध नहीं होता, स्कन्ध नहीं बनते।

यह हम अत्यन्त स्पष्टरूप से देखते हैं कि एक पुस्तक के रूखे दो पृष्ठ आपस में चिपकते नहीं हैं; किन्तु यदि उनके बीच में एक बूँद स्निग्ध गोंद की आ जावे तो वे चिपक जाते हैं। पृष्ठों में व्याप्त रंग, रस और गंध से चिपकने और नहीं चिपकने का कोई संबंध नहीं है। अत: यह बात हाथ पर रखे आँवले के समान स्पष्ट है कि स्कंधरूप बंध में स्निग्धता और रूक्षता ही कारण है।

यद्यपि यह सत्य है कि स्निग्धता और रूक्षता से बंध होता है; तथापि परमाणु के स्कंधरूप बंध के लिए और भी अनेक शर्तें हैं। जैसे – **जघन्य गुणवालों का, समानगुणवालों का बंध नहीं होता आदि।**

एक-एक परमाणु में अनन्त अविभागी प्रतिच्छेद होते हैं। वे घटते-बढते रहते हैं। **शक्ति के सबसे जघन्य अंश को अविभागी प्रतिच्छेद कहते हैं।**

जिसप्रकार बकरी, गाय और भैंस के दूध या घी में उत्तरोत्तर अधिक स्निग्धता एवं रेत, बजरी, पत्थर आदि में उत्तरोत्तर अधिक रूक्षता पाई जाती है; उसीप्रकार परमाणुओं में भी न्यूनाधिक स्निग्ध और रूक्षत्व पाया जाता है।

यद्यपि 'गुण' शब्द के अनेक अर्थ होते हैं; पर यहाँ प्रकरणवश से गुण शब्द का प्रयोग शक्त्यंशों के रूप में हुआ है।

एक गुणवाले स्निग्ध परमाणु का अन्य एक गुणवाले तथा अन्य दो, तीन, चार, संख्यात, असंख्यात, अनन्त स्निग्ध गुणवाले परमाणुओं के साथ बंध नहीं होता है तथा एक गुण स्निग्ध परमाणु का एक गुण रूक्ष तथा दो, तीन, चार, संख्यात, असंख्यात और अनन्त गुण रूक्षवाले के साथ भी बंध नहीं होता है।

इसीप्रकार एक गुणवाले रूक्ष परमाणु का अन्य एक गुण रूक्ष या स्निग्ध या दो, तीन, चार, संख्यात, असंख्यात व अनन्त गुणवाले स्निग्ध या रूक्ष परमाणुओं के साथ बंध नहीं होता है।

दो स्निग्ध शक्त्यंशवालों का दो रूक्ष शक्त्यंशवालों के साथ, तीन स्निग्ध शक्त्यंशोंवाले का तीन रूक्ष शक्त्यंशवालों के साथ, दो स्निग्ध शक्त्यंशों वाले का दो स्निग्ध शक्त्यंशों वालों के साथ, दो रूक्ष शक्त्यंशों का दो रूक्ष शक्त्यंशवालों के साथ बंध नहीं होता।

स्निग्ध परमाणु का दो अधिक शक्त्यंशवाले स्निग्ध परमाणु के साथ बंध होता है। रूक्ष परमाणु का दो अधिक शक्त्यंशवाले रूक्ष परमाणु के साथ बंध होता है तथा स्निग्ध का रूक्ष के साथ, रूक्ष का स्निग्ध के साथ सम या विषम गुणों के होने 'द्व्यधिकादिगुणानां तु' इसी नियम से बंध होता है, किन्तु जघन्य शक्त्यंशवाले का बंध सर्वथा वर्जनीय है।

जब परमाणुओं का स्कंधरूप में बंध होता है तो अधिक गुण (शक्त्यंश) वाले परमाणु, कम गुणवालों को स्वयं में समाहित कर लेते हैं; इसलिए उन्हें पारिणामिक कहते हैं।

जिसप्रकार गीला गुड़, उस पर पड़नेवाली धूल को गुड़रूप कर लेता है;

उसीप्रकार कम शक्ति-अंशवाले परमाणु या स्कंधों को अधिक गुण (शक्ति-अंश) वाले परमाणु या स्कंध अपनेरूप परिणमित कर लेते हैं।

दो गुणवाले स्निग्ध परमाणु के लिए चार गुण शक्त्यंशवाले स्निग्ध परमाणु, पारिणामिक होते हैं और दो शक्त्यंशवाले स्निग्ध परमाणु के लिए चार शक्त्यंशवाले रूक्ष व स्निग्ध परमाणु, पारिणामिक होते हैं तथा दो गुण शक्त्यंशवाले रूक्ष परमाणुओं के लिए चार शक्त्यंशवाले स्निग्ध व रूक्ष परमाणु, पारिणामिक हैं।

यहाँ एक प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि इसप्रकार के निरूपण का क्या प्रयोजन है; क्योंकि इसमें अपना किया तो कुछ होना नहीं है।

आचार्य अकलंकदेव तत्त्वार्थराजवार्तिक में उक्त प्रकरण का समापन करते हुए लिखते हैं –

''बन्ध की इतनी लम्बी चरचा करने का प्रयोजन यह है कि आत्मा के योगव्यापार से आत्मा के प्रदेशों में स्निग्धरूप परिणत अनन्तप्रदेशी कर्म बंध को प्राप्त होते हैं। ये ज्ञानावरणादि कर्म अपनी तीस कोड़ाकोड़ी सागर आदि तक की स्थिति तक घनपरिणामी बन्ध को प्राप्त रहते हैं, विघटित नहीं होते।''

तात्पर्य यह है कि जिसप्रकार पुद्गल परमाणुओं में बंध का कारण एकमात्र स्निग्धता और रूक्षता है; उसीप्रकार आत्मा के साथ कर्मबंध का कारण भी आत्मा में होनेवाली रागरूप स्निग्धता और द्वेषरूप रूक्षता ही है।

जिसप्रकार पुद्गल के स्निग्ध-रूक्षरूप स्पर्श गुण के अतिरिक्त अनन्त गुणों का बंध के होने में कोई योगदान नहीं है; उसीप्रकार **आत्मा के श्रद्धा और चारित्रगुणसंबंधी मिथ्यात्व और राग-द्वेष के अतिरिक्त अन्य गुण और उनकी पर्यायों का कर्मबंध होने में कोई योगदान नहीं है।**

आचार्य कुन्दकुन्द कृत प्रवचनसार की तात्पर्यवृत्ति टीका में आचार्य जयसेन लिखते हैं –

''जिसप्रकार शुद्ध-बुद्ध स्वभाव द्वारा यह आत्मा बन्ध रहित होने पर भी, पश्चात् अशुद्धनय से स्निग्ध के स्थानीय रागभाव तथा रूक्ष के स्थानीय द्वेषभावरूप से जब परिणमित होता है, तब परमागम में कही गई विधि से बन्ध का अनुभव करता है; उसीप्रकार परमाणु भी स्वभाव से बन्ध रहित होने पर भी, जब बन्ध के कारणभूत

स्निग्ध-रूक्ष गुणरूप से परिणमित होता है, तब दूसरे पुद्गल के साथ विभाव पर्यायरूप बन्ध का अनुभव करता है।

बकरी के दूध में, गाय के दूध में, भैंस के दूध में चिकनाई की वृद्धि के समान; जिसप्रकार जीव में बन्ध के कारणभूत स्निग्ध के स्थानीय रागपना तथा रूक्ष के स्थानीय द्वेषपना, जघन्य विशुद्धि-संक्लेश स्थान से प्रारम्भ कर परमागम में कहे गये क्रम से उत्कृष्ट विशुद्धि-संक्लेश पर्यन्त बढ़ते हैं; उसीप्रकार पुद्गल परमाणु द्रव्य में भी, बन्ध के कारणभूत स्निग्धता और रूक्षता पहले कहे गये जलादि की तारतम्य (क्रम से बढ़ती हुई) शक्ति के उदाहरण से एक गुण नामक जघन्य शक्ति से प्रारम्भ कर अन्य गुण नामक अविभागी प्रतिच्छेदरूप दूसरे आदि शक्ति विशेष से अनंत संख्या तक बढ़ते हैं; क्योंकि पुद्गलद्रव्य के परिणामी होने के कारण परिणाम का निषेध किया जाना शक्य नहीं है।

विशेष यह है कि – परम चैतन्य परिणति लक्षण परमात्मतत्त्व की भावनारूप धर्मध्यान, शुक्लध्यान के बल से; जिसप्रकार जघन्य स्निग्ध शक्ति के स्थानीय राग के क्षीण होने पर और जघन्य रूक्ष शक्ति के स्थानीय द्वेष के क्षीण होने पर, जल और रेत के समान जीव का बन्ध नहीं होता है; उसीप्रकार पुद्गल परमाणु के भी जघन्य स्निग्ध और रूक्ष शक्ति का प्रसंग होने पर बन्ध नहीं होता है – ऐसा अभिप्राय है।[१]''

यहाँ पर जानने की विशेष बात यह है कि यहाँ पर आत्मा के बंध का उदाहरण देकर पुद्गल के बंध को समझाया गया है।

उक्त गाथाओं और उनकी टीकाओं में पुद्गल स्कन्धों के बनने की प्रक्रिया समझाई गई है। **एकप्रदेशीय पुद्गल परमाणु मूलत: पुद्गलद्रव्य है और अनेक परमाणुओं के स्कंध पुद्गलद्रव्य की पर्यायें हैं।**

पुद्गल तो परस्पर बंधते ही हैं; स्कंध के रूप में परिणमित होते ही हैं। उनमें परस्पर और जीव के साथ उनके बंध की प्रक्रिया का क्या स्वरूप है – यही बात यहाँ समझाई जा रही है।

उक्त बंध होने में कारण उनमें होनेवाली स्निग्धता और रूक्षता है। यद्यपि

जीवों में स्निग्धता और रूक्षता नहीं होती; तथापि राग-द्वेष होते हैं। जीव के साथ पौद्गलिक कर्मों का बंध और नोकर्मों का संबंध होने का कारण जीव की रागरूप स्निग्धता और द्वेषरूप रूक्षता ही है। बंध होने की उक्त संक्षिप्त प्रक्रिया यहाँ समझाई जा रही है।

प्रश्न : यह तो ठीक है कि आत्मा में उत्पन्न होनेवाले मोह-राग-द्वेष ही मूलत: बंध के कारण हैं; पर पुद्गल का पुद्गल के साथ बंध की यह प्रक्रिया तो अप्रयोजनभूत ही है।

उत्तर : हाँ, यह तो है कि आप यह नहीं समझ पायेंगे तो आपका कोई बड़ा नुकसान होनेवाला नहीं है; पर लौकिक कार्यों में इतनी बुद्धि भ्रमाते हो तो थोड़ी-बहुत सर्वज्ञकथित इस विषय में लग जावे तो भी कोई हानि नहीं है।।३३-३७।।

(क्रमश:)

अब... डॉ. भारिल्ल जिनवाणी चैनल पर

जिनवाणी JINVANI
सुख, शान्ति, समृद्धि

जयपुर (राज.) : अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के मर्मस्पर्शी प्रवचन अब जिनवाणी चैनल पर प्रात: 7.00 से 7.30 बजे तक नियमित दिखाये जायेंगे। यह क्रम एक वर्ष तक नियमित चलेगा। स्मरणीय है कि इसके पूर्व अहिंसा चैनल, साधना चैनल व जी-जागरण चैनल पर विगत 10 वर्षों से आपके नियमित प्रवचन प्रसारित किये जाते रहे हैं।

– अखिल बंसल,
महामंत्री-अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद्

छहढाला प्रवचन

सम्यग्ज्ञान की महिमा

सकल द्रव्य के गुन अनन्त पर्याय अनन्ता।
जानै एकै काल प्रकट केवलि भगवन्ता।।
ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारन।।४।।
कोटि जन्म तप तपैं ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन मांहि त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।।
मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।।५।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की चौथी ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

केवलज्ञान प्रकट करके जो परमात्मा हुए, वे पहले अनादि से तो बहिरात्मा ही थे, उन्होंने पहले तो सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, उसके साथ मति-श्रुतरूप सम्यग्ज्ञान हुआ अर्थात् बहिरात्मापना छोड़कर वे अन्तरात्मा हुए। बाद में शुद्धोपयोग से स्वरूप में लीन होकर चारित्ररूप मुनिदशा साधी। उसमें किसी को अवधि-मन:पर्ययज्ञान प्रकट होता है और किसी को नहीं भी प्रकट होता, उसके साथ मोक्षमार्ग का संबंध नहीं है। पश्चात् शुद्धोपयोग से स्वरूप में पूर्ण लीन होने पर वीतरागता और केवलज्ञान हुआ अर्थात् वे अरहन्त परमात्मा हुए। वे परमात्मा दिव्य शक्तिवाले केवलज्ञान से तीनलोक-तीनकाल को एकसाथ प्रत्यक्ष जानते हैं। 'णमो अरहंताणं' कहते ही ऐसी केवलज्ञान की प्रतीति साथ में आनी चाहिए, तभी अरहन्तदेव को सच्चा नमस्कार हो सकता है। पंचपरमेष्ठी में अरहंत भगवान तथा सिद्ध भगवान केवलज्ञानी हैं। सीमंधरनाथ आदि लाखों अरहंत भगवान आज भी

इस मनुष्यलोक में विचर रहे हैं। ऐसे केवलज्ञान की प्रतीति आत्मा के ज्ञानस्वरूप की प्रतीतिपूर्वक होती है। सर्वज्ञस्वभावी आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक उसका अनुभव करते-करते केवलज्ञान होता है, अन्य उपाय से केवलज्ञान नहीं होता। पहले सम्यग्ज्ञान भी शुभराग से नहीं होता, किन्तु राग रहित आत्मा के अनुभव से ही होता है, उसके बाद केवलज्ञान भी रागरहित आत्मा के अनुभव में एकाग्रतारूप शुद्धोपयोग से ही होता है – इसप्रकार पहिचाने तो ही केवलज्ञान को पहिचाना कहा जाय। राग से ज्ञान होना माने तो उसने केवलज्ञान को भी रागवाला मान लिया; क्योंकि राग के कारण माना तो उसका कार्य भी रागवाला ही होगा।

राग और ज्ञान की अत्यन्त भिन्नता जानकर ज्ञानस्वभाव का अनुभव करना ही केवलज्ञान का कारण है – इसप्रकार धर्मी जीव जानता है और वह ज्ञान के साथ राग को किंचित् भी नहीं मिलाता है। वीतराग-विज्ञान से वह केवलज्ञान और मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

अगाध शक्तिवाला, सर्वथा राग रहित - ऐसा केवलज्ञान है, उस केवलज्ञान का स्वीकार राग से नहीं हो सकता, वह तो ज्ञान स्वभाव की सन्मुखता से ही होता है। ज्ञानस्वभाव के सन्मुख होने पर राग से भिन्न पड़ा अर्थात् अपने में भेदज्ञान होकर सम्यग्ज्ञान हुआ, तब सर्वज्ञ की भी सच्ची प्रतीति हुई। उस ज्ञान के साथ राग रहित वीतरागी सुख भी साथ ही है। सम्यक् मति-श्रुतज्ञान राग से भिन्न केवलज्ञान की जाति का है तथा वह ज्ञान के साथ केलि करनेवाला है।

इसप्रकार सम्यग्ज्ञान का स्वरूप पहिचान कर उसका सेवन करो; क्योंकि जगत में सम्यग्ज्ञान के समान अन्य कोई भी इस जीव को सुख का कारण नहीं है। सम्यग्ज्ञान ही जन्म-मरण के दु:खों को मिटानेवाला और मोक्षसुख देनेवाला परम अमृत है। यह बात अगले श्लोक में कहेंगे।

अहो ! जगत में जीव को सम्यग्ज्ञान के समान सुख का कारण अन्य कोई नहीं, पुण्य या पाप के भाव सुख के कारण नहीं, बाहर का कोई वैभव सुख का कारण नहीं, अन्तर में चैतन्य का परिणमन ही जीव को सर्वत्र सुख का कारण है। जन्म-जरा-मरण के रोग का निवारण करने के लिए यह सम्यग्ज्ञान परम अमृत है। इस

अमृत से जन्म-मरण का नाश करके जीव अमर पद को पाता है।

सम्यग्ज्ञान बिना करोड़ों जन्मों में तप तपने से अज्ञानी के जो कर्म झरते हैं, वे कर्म ज्ञानी के त्रिगुप्ति से एक-एक क्षण में सहज टल जाते हैं। सम्यग्ज्ञान के प्रताप से ज्ञानी को मन-वचन-काय से भिन्न चैतन्यपरिणति सदा वर्तती है और उससे उसे सहज निर्जरा हुआ करती है। ऐसी निर्जरा अज्ञानी को बहुत तप से भी नहीं होती। अज्ञानी जीव अनन्त बार मुनिव्रत धारण करके नवमें ग्रैवेयक तक उपजा, परन्तु अपने आत्मज्ञान बिना लेशमात्र भी सुख नहीं पाया। देखो तो सही ! अज्ञानी के पंचमहाव्रत भी किंचित् सुख के कारण नहीं हैं, कहाँ से हों ? वह तो शुभराग है और राग भला सुख का कारण कैसे हो सकता है ? राग के फल में तो बाहर के संयोग मिलते हैं और अन्दर आकुलता होती है, किन्तु चैतन्य की शान्ति राग से नहीं मिलती, वह तो चैतन्य के ज्ञान से ही मिलती है।

अंतरंग में राग से पार आत्मा के शुद्ध स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हुआ, वह सम्यग्ज्ञान है, वहाँ बाहर का विशेष जानपना हो या न हो शास्त्र कम हो या विशेष, उसके साथ संबंध नहीं है। आत्मा को जाननेवाला सम्यग्ज्ञान स्वयं ही सुख का कारण है। आत्मा के अतीन्द्रिय सुख के अनुभव सहित ही सम्यग्ज्ञान प्रकट होता है और वह स्वयं परम सुख से भरा है। आत्मा के ज्ञान के परिणमन के साथ सुख का परिणमन भी साथ ही है। सम्यग्ज्ञान के अन्दर तो चैतन्य के अनन्त भाव भरे हैं। अरे! सम्यग्ज्ञान की महिमा की जगत को खबर नहीं है। सम्यग्ज्ञान जैसा सुखकारी तीन काल तीन लोक में अन्य कोई नहीं है। पहले कहा भी था –

तीन लोक तिहुँ काल मांहि नहिं दर्शन सो सुखकारी

और यहाँ सम्यग्ज्ञान के लिए कहते हैं –

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन।

देखो तो सही, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की परम महिमा। उसको परमहितरूप जानकर हे भव्य जीवों ! उसकी आराधना करो।

आत्मा के सम्यग्ज्ञान में सर्व समाधान और परमसुख है, वह संसार का सम्पूर्ण विष उतारनेवाला उत्कृष्ट अमृत है। सुख के लिए अन्य कुछ मत शोधो। अन्तर्मुख

होकर अपने आत्मा का सम्यग्ज्ञान करो। आनन्द की उत्पत्ति तेरे सम्यग्ज्ञान में है। कुटुम्ब में, पैसे में, शरीर में कहीं आनन्द मिलनेवाला नहीं है। आत्मा के सम्यग्ज्ञान बिना देवलोक के देव भी दु:खी हैं, तो फिर अन्य की क्या बात ? शुभराग, पुण्य और उसका फल – यह सब आत्मा के ज्ञान से भिन्न हैं। उस राग में, पुण्य में, पुण्य के फल में कोई सुख माने तो उसे सच्चे ज्ञान की और सच्चे सुख की खबर नहीं है। ज्ञान और सुख के बहाने वह अज्ञान और दु:ख का ही वेदन करता है। बापू ! सुख और ज्ञान तो तेरा स्वभाव है उसकी पहिचान कर, तो ही सम्यग्ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख का अनुभव होगा। अतीन्द्रिय ज्ञान में जो सुख है, वह सुख इन्द्र पद में, चक्रवर्ती पद में अथवा जगत में अन्य कहीं भी नहीं अर्थात् ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कहीं सुख है ही नहीं। सम्यग्ज्ञान में सुख है, अन्यत्र कहीं है ही नहीं। इस अपेक्षा से केवली भगवन्तों को एकान्त सुखी कहा है। **(क्रमश:)**

पाठकों के पत्र ...

तत्त्वार्थसूत्र पर डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा लिखित टीका तत्त्वार्थमणिप्रदीप क्रमश: संपादकीय के रूप में प्रकाशित हो रही है, जिसे पढकर अनेक लोगों के पत्र प्राप्त हो रहे हैं। विषय के सूक्ष्म विवेचन के संदर्भ में इन्दौर से अ. भा. दि. जैन महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अशोकजी बड़जात्या लिखते हैं कि –

इतना सटीक विवेचन ...

''श्रद्धेय श्री डॉ. साहब ! आज मार्च (2015) का वीतराग-विज्ञान मिला और उसमें (सम्पादकीय-तत्त्वार्थमणिप्रदीप : आचार्य उमास्वामीकृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका) जो पांचवें अध्याय में अजीव तत्त्व के प्रकरण में 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' सूत्र की व्याख्या की गई है, उसे पढकर कई शंकाओं का समाधान हुआ। एक बात और समझ में आई कि यह सूत्र आचार्यश्री उमास्वामी ने पाँचवें अध्याय में क्यों लिखा है, जबकि यह जीव का व्यवहार वर्णन है।

उपकार (उपग्रह) का इतना सटीक विवेचन अब तक और कहीं पढने में नहीं आया। इसप्रकार के सटीक विवेचन के लिये कोटि-कोटि शुभकामनाएँ।''

नोट :- ज्ञातव्य है कि तत्त्वार्थमणिप्रदीप का पुस्तकाकार प्रकाशन पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट में उपलब्ध है। इसमें इसीप्रकार के अनेक मार्मिक प्रकरण आये हैं। आप यह टीका साहित्य विक्रय विभाग से मंगवाकर स्वाध्याय का लाभ ले सकते हैं। **– सह-सम्पादक**

नियमसार प्रवचन –

भाषा समिति का स्वरूप

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के शुद्धभावाधिकार की 62वीं गाथा पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

छंद मूलत: इसप्रकार है –

पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पप्पसंसियं वयणं।
परिचत्ता सपरहिदं भासासमिदी वदंतस्स।।६२।।

(हरिगीत)

परिहास चुगली और निन्दा तथा कर्कश बोलना।
यह त्यागना ही समिति दूजी स्व-पर हितकर बोलना।।६२।।

चुगली करना, हँसी उड़ाना, कठोर भाषा का प्रयोग करना, दूसरों की निन्दा करना और अपनी प्रशंसा करना – इन कार्यों के त्यागी और स्वपरहितकारी वचन बोलने वाले के भाषा समिति होती है।

(गतांक से आगे....)

वास्तव में आत्मा भाषा बोल नहीं सकता; किन्तु भाषा बोली जाती हो उससमय शुभराग कैसा होता है तथा अन्दर स्वरूप-रमणता कैसी होती है, उसकी यहाँ पहचान कराई है। मुनिराज वचन बोलते हैं – यह व्यवहार का कथन है। बोलने की क्रिया जड़ की है, वास्तव में आत्मा नहीं बोलता।

प्रश्न :– द्रव्यानुयोग की अपेक्षा से तो आत्मा नहीं बोल सकता; किन्तु चरणानुयोग की अपेक्षा से तो बोल सकता है न ?

उत्तर :– यह बात कहाँ से निकाल डाली भाई ? यहाँ तो भाषा निकलती हो उससमय राग कैसा होता है, यह बता रहे हैं। व्यवहार से आत्मा बोल सकता हो और निश्चय से नहीं बोल सकता हो – ऐसा है ही नहीं, क्योंकि बोलना तो आत्मा के स्वभाव में ही नहीं है।

पैशून्य – चुगलखोर मनुष्य राजा को किसी एक पुरुष, किसी एक कुटुम्ब अथवा किसी एक ग्राम के लिए महाविपत्ति के कारणभूत वचनों को कहे, वह चुगली है। धर्मात्मा जीव ऐसी बात को गुप्त रखता है, क्योंकि अनादि संसार में

परिभ्रमण करते हुये जीवों के अनेक प्रकार के परिणाम होते हैं, वे मात्र ज्ञान के ज्ञेय हैं। धर्मात्मा ऐसे जीव के दोष के प्रसंग में शान्ति रखता है।

हास्य – होली आदि अनेक प्रसंगों में किसी का विकृत रूप देखकर अथवा सुनकर हास्य नामक नोकषाय से उत्पन्न होने वाला, किंचित् शुभ के साथ मिश्रित होने पर भी अशुभकर्म का कारण, पुरुष के मुख के विकार के साथ सम्बन्ध वाला हास्यकर्म है। मुनि के छठे गुणस्थान में तीन कषाय का अभाव हुआ है, वीतरागी परिणति प्रकट हुई है, उनको ऐसे हास्यादि के अशुभभाव नहीं होते। वे हास्यवचन कहने का विकल्प नहीं करते – ऐसा शुभभाव व्यवहार है। साथ में अकषाय वीतरागभावरूप परिणति प्रकट हुई है, वह निश्चय भाषासमिति है। मुनिराज ठट्ठा, मस्करी, मजाक नहीं करते।

कर्कश वचन – कान में सुनते ही अति अप्रिय लगे वह कर्कश वचन है। स्त्रियाँ झगड़ा करें तब वृश्चिकदंश जैसे ताना मारें वह सज्जनता नहीं कही जाती। मुनिराज दूसरों को अप्रीति-उत्पादक वचन नहीं बोलते – ऐसा भाव नहीं करते।

परनिन्दा – अन्य के विद्यमान दोष भी मुनि प्रकट नहीं करते, तब अविद्यमान दोषों की तो बात ही कहाँ रही? मुनि भाषा द्वारा किसी के दोष प्रकट नहीं करते, इसप्रकार का शुभराग उनके होता है, किन्तु अशुभराग नहीं होता।

आत्मप्रशंसा – अपने में अविद्यमान गुणों की तो बात ही नहीं, मुनिराज तो अपने में विद्यमान गुणों की भी प्रशंसा नहीं करते।

मुनि जड़ शब्द बोलें, यह निमित्त से कथन है। वास्तव में तो मुनि ऐसा भाव नहीं करते – ऐसा यहाँ कहना है। उपर्युक्त सभी अप्रशस्त वचन त्यागकर स्व तथा अन्य जीव को शुभ एवं शुद्ध परिणति में निमित्तभूत वचन भाषा समिति है। सामने वाले जीव को पुण्य-पापरहित ध्रुवस्वभाव प्रकटे ऐसे वचन मुनिराज बोलते हैं। भाषासमिति को शुद्ध का निमित्त कहा, किन्तु वह तभी है जब सामने वाला जीव शुद्धभाव प्रकट करे। यदि सामने वाला जीव शुभभाव करे तो वे ही वचन शुभ के निमित्त कहे जावेगें। यह व्यवहारसमिति है।

(मालिनी)

समधिगतसमस्ताः सर्वसावद्यदूराः
स्वहितनिहितचित्ताः शांतसर्वप्रचाराः।
स्वपरसफलजल्पाः सर्वसंकल्पमुक्ताः
कथमिह न विमुक्तेर्भाजनं ते विमुक्ताः।।

(वीर)

जान लिये हैं सभी तत्त्व अर दूर सर्व सावद्यों से।
अपने हित में चित्त लगाकर सर्व प्रकार से शान्त हुए।।
जिनकी वाणी स्वपर हितकरी संकल्पों से मुक्त हुए।
मुक्ति भाजन क्यों न हो जब सब प्रकार से मुक्त हुए।।

जिन्होंने वस्तुस्वरूप को जान लिया है, जो सभी प्रकार के सावद्य (पापकर्म) से दूर हैं, जिन्होंने अपने चित्त को स्वहित में स्थापित किया है, जिनके प्रचारित होने से विकल्प शान्त हो गये हैं, जिनका बोलना स्व-परहित से सफल है और सभी प्रकार के संकल्पों से विशुद्ध हैं; ऐसे विमुक्त पुरुष इस लोक में मुक्ति के भाजन क्यों नहीं होंगे ?

धर्मात्माजीव ने वास्तविक वस्तु का स्वरूप जान लिया है, द्रव्य, गुण, पर्याय, राग, विकार, स्वभाव, विभाव जैसा है वैसा पृथक्-पृथक् सब जान लिया है। वह अपने ज्ञान से स्वहित में एकाग्र हुआ है, वह धर्मात्मा मुनि किसी के काम को अपने माथे नहीं लेता – कषाय की बाह्य प्रवृत्ति अपने माथे नहीं लेता। 'अमुक सेठ के मकान-दुकान के उद्घाटन में उपस्थित होना' ऐसे काम छठे-सातवें गुणस्थान में झूलने वाले मुनिराज अपने जिम्मे लेंगे क्या? अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार विकल्प उठे कि शास्त्र लिखूँ और फिर क्षण में स्वरूप में ठहर जायें – ऐसे मुनि अपने माथे कोई काम नहीं लेते। पुनः कैसे हैं मुनि? जिनकी वाणी सफल है। सामने वाले जीव का कल्याण हो ऐसा ही वाणी का योग होता है। मुनि यद्वा-तद्वा वचन नहीं बोलते। ऐसे विमुक्त जीव मोक्ष के भाजन क्यों न हों? अवश्य हों।

(अनुष्टुभ्)

परब्रह्मण्यनुष्ठाननिरतानां मनीषिणाम्।
अन्तैरप्यलं जल्पैः बहिर्ज्जल्पैश्च किं पुनः।।८५।।

(दोहा)

आत्मनिरत मुनिवरों के जब अन्तर्जल्प विरक्ति।
तब फिर क्यों होगी अरे बहिर्जल्प अनुरक्ति।।८५।।

परब्रह्म के अनुष्ठान में निरत मनीषियों के जब अन्तर्जल्प से भी विरक्ति है तो फिर बहिर्जल्प की तो बात ही क्या करें; उनसे तो विरक्ति नियम से होगी ही।

इसप्रकार भाषा समिति का स्वरूप कहा। ●

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : विकारी पर्याय को द्रव्य से भिन्न और शुद्धपर्याय को द्रव्य से अभिन्न क्यों कहा जाता है ?

उत्तर : विकारी पर्याय परद्रव्य की सन्मुखता करती है, इसलिये विकार को द्रव्य से भिन्न कहा और शुद्धपर्याय स्वद्रव्य के सन्मुख होती है, अत: शुद्धपर्याय द्रव्य से अभिन्न कहा जाता है। उस अभिन्नता का अर्थ यह है कि द्रव्य की जितनी भी सामर्थ्य है - शक्ति है वह ज्ञानपर्याय में आ जाती है, प्रतीति में आ जाती है। इसलिये शुद्धपर्याय को द्रव्य से अभिन्न कहा गया है; किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि अनित्यपर्याय नित्यद्रव्य के साथ एकमेक हो जाती है। द्रव्य और पर्याय दोनों का स्वरूप ही भिन्न होने से दोनों भिन्न हैं। पर्याय द्रव्य का आश्रय करती है, लक्ष्य करती है, इसलिये पर्याय शुद्ध होती है; किन्तु इससे द्रव्य-पर्याय का एकत्व हो जाता हो - ऐसा नहीं है। दोनों का स्वरूप भिन्न होने से पर्याय द्रव्यरूप और द्रव्य पर्यायरूप कभी भी होना अशक्य है।

पर्यायार्थिकनय से अशुद्धपर्याय द्रव्य से अभिन्न है; इसलिये द्रव्य भी अशुद्ध है - ऐसा कोई कहे तो यह बात सत्य नहीं है। पर्याय अशुद्ध होने पर भी त्रिकाली द्रव्य कभी भी अशुद्ध होता ही नहीं, त्रिकाली द्रव्य तो शुद्ध ही है। विकार तो पर के लक्ष्य से होने वाला द्रव्य की एक समय की अवस्था का भेष है और मोक्षमार्ग की पर्याय भी द्रव्य की एक समय अवस्था का भेष है। अरे ! सिद्धदशा भी एक समय की अवस्था का भेष है, वह भी त्रिकाली ध्रुव वस्तु नहीं है। यदि त्रिकाली द्रव्य से पर्याय अभिन्न ही हो तो विकारी और अविकारी पर्याय का अभाव होने पर द्रव्य का भी अभाव (नाश) हो जाये। किन्तु द्रव्य तो पर्याय से कथंचित् भिन्न होने से त्रिकाल स्थायी है। समयसार के संवर अधिकार में तो विकार के प्रदेश को भी द्रव्य से भिन्न कहा है, क्रोधादि कषाय और ज्ञान के प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं - ऐसा कहा है।

प्रश्न : पर्याय द्रव्य से भिन्न है तो अनुभूति है, वही आत्मा है - ऐसा क्यों कहा जाता है ?

उत्तर : अनुभूति की पर्याय में आत्मद्रव्य का ज्ञान आ जाता है, द्रव्य का सामर्थ्य पर्याय में आ जाता है। जितना द्रव्य का सामर्थ्य है, वह पर्याय में जानने में आ जाता है - इस अपेक्षा से अनुभूति की पर्याय है, वही आत्मा है - ऐसा कहा है। यदि ध्रुवद्रव्य क्षणिक पर्याय में आ जावे तो द्रव्य का नाश हो जाये, अत: द्रव्य पर्याय में आता नहीं, अपितु द्रव्य का ज्ञान पर्याय में आ जाता है; इसलिये अनुभूति को आत्मा कहा है।

प्रश्न : प्रवचनसार में उत्पाद-व्यय-ध्रुव - इन तीनों के अंशों को पर्याय का भेद कहा है ?

उत्तर : ध्रुव अंश और त्रिकाली ध्रुव दोनों एक ही है। भेद की अपेक्षा से त्रिकाली को अंश कहाँ है, पर वह अंश त्रिकाली ध्रुव ही है।

प्रश्न : पर्याय के षट्कारक स्वतंत्र हैं, पर्याय द्रव्य को नहीं स्पर्शती तो भी उस पर्याय को द्रव्य सन्मुख होना चाहिये – ऐसा क्यों कहते है ?

उत्तर : पर्याय के षट्कारक स्वतंत्र है, पर्याय द्रव्य को नहीं स्पर्शती, तो भी पर्याय की स्वतंत्रता देखनेवाले का लक्ष द्रव्य पर ही होता है।

मेरठ में बालकों हेतु विशेष कक्षायें

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित 49वें वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर मेरठ (उ.प्र.) में दिनांक 24 मई से 10 जून 2015 तक बाल मनोविज्ञान की विशेषज्ञा एवं विविध बाल साहित्य की रचयिता डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया, मुम्बई द्वारा बालकों के लिये विशेष कक्षाओं का आयोजन किया जायेगा। अधिक से अधिक बालक इस अवसर का लाभ लेवें।

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

26 अप्रैल से 2 मई	सोलापुर	इन्द्रध्वज विधान
17 से 22 मई	विलेपार्ले (मुम्बई)	पंचकल्याणक
24 मई से 10 जून	मेरठ	प्रशिक्षण-शिविर
11 जून से 15 जुलाई	विदेश	तत्त्वप्रचारार्थ

समाचार दर्शन -

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव संपन्न

विदिशा (म.प्र.) : दसवें तीर्थंकर श्री शीतलनाथ स्वामी के चार कल्याणकों से पवित्र ऐतिहासिक नगरी विदिशा में **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर एवं तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ के संयुक्त तत्त्वावधान में श्री 1008 आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव** बुधवार, दिनाँक 1 अप्रैल 2015 से सोमवार 6 अप्रैल 2015 तक अनेक विशिष्ट कार्यक्रमों सहित सानन्द सम्पन्न हुआ।

महोत्सव में आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल** के प्रतिदिन प्रवचनसार-ज्ञानस्वभाव की विशेषता विषय पर हुये मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला। आपके अतिरिक्त डॉ. उत्तमचंदजी छिन्दवाड़ा, पण्डित विमलदादा झांझरी उज्जैन, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल जयपुर, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर, पण्डित बाबूभाईजी फतेपुर, पण्डित शैलेषभाई तलोद, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील जयपुर, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री गुना, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा इत्यादि अनेक विद्वानों के प्रवचनों का लाभ प्राप्त हुआ।

पञ्चकल्याणक की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा-विधि प्रतिष्ठाचार्य ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियांधाना, मंच निर्देशक पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन, सह-प्रतिष्ठाचार्य पण्डित ऋषभजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, पण्डित अजितकुमारजी शास्त्री अलवर, पण्डित मनीषजी शास्त्री पिड़ावा, ब्र.नन्हेभैया सागर, ब्र.श्रेणिकजी जबलपुर, ब्र. सुकुमालजी झांझरी उज्जैन, पण्डित सुनीलजी 'धवल' भोपाल, पण्डित अनिलजी 'धवल' भोपाल, पण्डित विवेकजी शास्त्री इन्दौर, श्री अनुभवजी जैन गुना के सानिध्य में शुद्ध तेरापंथ आम्नायानुसार संपन्न हुई।

बालक ऋषभकुमार के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्रीमती शोभादेवी-मोतीलालजी जैन खैरागढ को प्राप्त हुआ। महोत्सव के सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी श्री राहुल-प्रज्ञा जैन कोटा, कुबेर इन्द्र-इन्द्राणी डॉ. अशोककुमार-ऋतु जैन इन्दौर थे। यागमंडल विधान का उद्घाटन श्री मुक्ति मण्डल संघ द्वारा डॉ. बासंतीबेन शाह मुम्बई, प्रतिष्ठा मंच का उद्घाटन श्री पदमकुमार-विकास-वैभव-वरूण पहाड़िया इन्दौर एवं प्रतिष्ठा मण्डप का उद्घाटन श्री कमलकुमार साकेत बड़जात्या मुम्बई ने किया। महोत्सव का ध्वजारोहण श्री निहालचंदजी जैन, जयपुर के करकमलों द्वारा किया गया।

महोत्सव के विशिष्ट कार्यक्रमों के अन्तर्गत इन्द्रसभा, राजसभा, अष्टदेवियों के भक्ति नृत्य, लेजर शो द्वारा स्वप्न दर्शन एवं तृतीय काल के भोगभूमि का प्रदर्शन, 45 फीट का कांच से बना विशाल पालना आदि कार्यक्रम दर्शनीय रहे। दिनांक 3 अप्रैल को बाल तीर्थंकर का सर्वप्रथम

अभिषेक करने का सौभाग्य श्री अनिलकुमारजी भागचन्दजी सेठी बैंगलोर को मिला। पालना झूलन का उद्घाटन श्रीमती कुसुम-प्रदीपजी चौधरी किशनगढ ने किया। सर्वप्रथम आहारदान का सौभाग्य श्री डॉ. आर के जैन विदिशा एवं विजयभाई हाथरसवाले दादर, ब्रजलाल भाई हथाया ग्रान्ट रोड मुम्बई को प्राप्त हुआ।

इस महोत्सव में मूलनायक महावीर भगवान के भेंटकर्त्ता पण्डित ज्ञानचन्दजी प्रमोदकुमारजैन परिवार विदिशा एवं विराजमानकर्त्ता श्री अजितप्रसादजी वैभव जैन दिल्ली, विधिनायक आदिनाथ भगवान के भेंटकर्त्ता श्री लालजीरामजी संजीव जैन विदिशा एवं विराजमानकर्त्ता श्री प्रदीपजी चौधरी परिवार किशनगढ थे। भगवान शीतलनाथ की प्रतिमा के भेंटकर्त्ता श्री धर्मदासजी मनोजजी जैन ललितपुर एवं विराजमानकर्त्ता डॉ.वासंतीबेन मुक्ति मण्डल संघ मुम्बई थे।

आचार्य कुन्दकुन्द के स्टेच्यू का अनावरण श्री प्रकाशचन्दजी सेठी परिवार जयपुर, श्रीमद् राजचन्द्रजी के स्टेच्यू का अनावरण श्रीमती शोभनाबेन -अश्विनभाई मेहता मुम्बई एवं गुरुदेवश्री के स्टेच्यू का अनावरण श्री अनंतभाई ए. शेठ एवं श्री नेमिषभाई शांतिलाल परिवार मुम्बई द्वारा हुआ।

संपूर्ण महोत्सव में पूजन, प्रवचन, भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों की धूम मची रही। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत श्री भरत-बाहुबली नाटक की वैराग्यमयी प्रस्तुति आयोजित हुई। सत्साहित्य में 50% की छूट भी प्रदान की गई, जिसका लाभ सभी साधर्मियों ने लिया। संपूर्ण कार्यक्रम में लगभग 5-7 हजार साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया।

महोत्सव के **महामंत्री** - डॉ.मुकेशजी 'तन्मय', **मार्गदर्शक** - पण्डित अशोकजी लुहाड़िया, ब्र. अमित भैया व पण्डित राकेशजी दिल्ली, **संयोजक** - पण्डित लालजीरामजी विदिशा, श्री प्रमोदकुमारजी व डॉ. विनोदजी चिन्मय , **प्रचार मंत्री** - डॉ.मक्खनलालजी जैन, श्री महेन्द्रजी बड़कुल, श्री शुद्धात्मप्रकाशजी जैन व श्री अध्यात्मप्रकाशजी जैन के अतिरिक्त विदिशा, इन्दौर, भोपाल व गुना के मुमुक्षु मण्डलों, विदिशा, उज्जैन व गुना के युवा फैडरेशन तथा महिला युवा फैडरेशन विदिशा आदि अनेक संस्थाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

सभी कार्यक्रम पण्डित ज्ञानचन्दजी विदिशा के निर्देशन में सम्पन्न हुये। ●

आध्यात्मिक कवि सम्मेलन संपन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में वीतराग-विज्ञान महिला मण्डल द्वारा दिनांक 31 मार्च को भगवान महावीर के सन्देश एवं शिक्षाओं पर आधारित एक आध्यात्मिक कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसका संचालन श्रीमती सुशीला जैन अलवरवालों ने किया। इस अवसर पर श्रीमती आशा काला, प्रमिला सेठी एवं निशाजी उपस्थित थीं। कार्यक्रम में जयपुर महानगर की सभी मण्डलों की महिलाओं ने भाग लिया।

डॉ. हुकमचंद भारिल्ल चैरिटेबल ट्रस्ट, जयपुर द्वारा –

पण्डित ज्ञानचन्दजी विदिशा का सम्मान

विदिशा (म.प्र.) : यहाँ श्री 1008 आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर 5000 से अधिक जनसमुदाय के मध्य **डॉ. हुकमचंद भारिल्ल चैरिटेबल ट्रस्ट, जयपुर द्वारा पण्डित ज्ञानचन्दजी विदिशा एवं उनके समस्त परिवार का तत्त्वप्रचार के क्षेत्र में उनके लाईफटाइम अचीवमेन्ट के लिये नागरिक अभिनन्दन किया गया।**

सम्पूर्ण सज्जित सभामंच पर जब श्री ज्ञानचंदजी का आगमन हुआ तो सभामंडप में उपस्थित समस्त जनसमूह ने अपने स्थान पर खड़े होकर, अपने हाथ हवा में लहराते हुये करतल ध्वनि करते हुये हर्षोल्लास का प्रदर्शन किया।

ट्रस्ट का परिचय, उद्देश्य एवं कार्यक्रमों की रूपरेखा ट्रस्ट के महामंत्री श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने प्रस्तुत की। ज्ञातव्य है कि उक्त ट्रस्ट द्वारा अब तक पूर्व में भी 14 विद्वान सम्मानित किये जा चुके हैं। सम्भवत: इतिहास में प्रथम ही अवसर होगा जब किसी सम्पूर्ण विद्वत्परिवार का इसप्रकार अभिनन्दन किया गया हो।

समारोह के अन्तर्गत अनेक महानुभावों द्वारा सम्पूर्ण परिवार को माल्यार्पण के अतिरिक्त पण्डित ज्ञानचन्दजी एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कमलादेवी को तिलक लगाकर, शॉल ओढाकर, श्रीफल भेंटकर, नकद राशि का लिफाफा भेंटकर एवं प्रशस्ति-पत्र प्रदानकर अभिनन्दन किया गया।

इस अवसर पर **तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने पण्डित ज्ञानचन्दजी विदिशा के कार्यों एवं व्यक्तित्व की भूरी-भूरी प्रशंसा की तथा विद्वानों के सम्मान की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा कि विद्वानों का सम्मान करने वाली समाज विद्वानों से समृद्ध होती है।**

अन्य वक्ताओं में डॉ. उत्तमचंदजी सिवनी, श्री अजितजी बड़ौदा एवं श्री बाबूभाई मेहता फतेहपुर प्रमुख थे।

अंत में पण्डित ज्ञानचन्दजी विदिशा ने अपने उद्बोधन में डॉ. भारिल्ल के साथ अपने सम्बन्धों की लम्बी पारी की चर्चा की। प्रशस्ति-पत्र का वांचन पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील ने एवं सभा का संचालन श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल जयपुर ने किया। ●

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें –
वेबसाईट – www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र-श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com

विदाई समारोह संपन्न

बांसवाड़ा (राज) : यहाँ ज्ञायक पारमार्थिक ट्रस्ट द्वारा संचालित आचार्य अकलंक देव जैन न्याय महाविद्यालय ध्रुवधाम में शास्त्री अन्तिम वर्ष के विद्यार्थियों का सप्तम दीक्षांत एवं विदाई समारोह दिनांक 9 अप्रैल को संपन्न हुआ।

इस अवसर पर डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर के मार्मिक प्रवचन का लाभ मिला।

कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री महिपालजी ज्ञायक ने की। समारोह के मुख्य अतिथि एवं कुलाधिपति डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर थे। विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री धनपालजी, पण्डित भोगीलालजी उदयपुर, पण्डित संजयजी शास्त्री परतापुर, पण्डित प्रवीणजी शास्त्री, पण्डित रीतेशजी शास्त्री, श्री शांतिलालजी सेठ, पण्डित आकाशजी शास्त्री, पण्डित संदीपजी शास्त्री आदि महानुभाव मंचासीन थे।

इस अवसर पर 12 विद्यार्थियों को शपथग्रहण पूर्वक न्यायशास्त्री की उपाधि से सम्मानित करते हुये कुलाधिपति डॉ. संजीवजी गोधा ने अपना मार्मिक उद्बोधन दिया।

कार्यक्रम में अन्तिम वर्ष के विद्यार्थियों ने ट्रस्ट सभी अध्यापकगणों का आभार व्यक्त किया एवं भविष्य में तत्त्वप्रचार में पूरा सहयोग देने की भावना व्यक्त की।

इस अवसर पर श्री महिपालजी ज्ञायक के अध्यक्षीय उद्बोधन के अतिरिक्त श्री शांतिलालजी, पण्डित जगदीशजी, पण्डित संजयजी, पण्डित रीतेशजी एवं श्रीमती प्रेक्षा जैन ने भी अपना उद्बोधन सभी विद्यार्थियों को दिया।

कार्यक्रम का संचालन पण्डित प्रवीणजी शास्त्री ने किया।

बण्डा में शिविर संपन्न

बण्डा (म.प्र.) : यहाँ श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर बण्डा के तत्त्वावधान में प्रतिवर्ष पाँच शिविरों का आयोजन पिछले पाँच वर्षों से किया जा रहा है।

इसी क्रम में इस वर्ष प्रथम शिविर दिनांक 2 से 15 अप्रैल तक संपन्न हुआ। शिविर का उद्घाटन दलपतपुर मुमुक्षु मण्डल द्वारा किया गया। दिनांक 15 अप्रैल को प्रथम शिविर का समापन एवं द्वितीय शिविर का उद्घाटन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित अरुणजी मोदी, पण्डित समकितजी मोदी, पण्डित अंकितजी शास्त्री, पण्डित अरविन्दजी शास्त्री, पण्डित मयंकजी शास्त्री, पण्डित सुलभजी मंगलार्थी, पण्डित शुभमजी शास्त्री आदि विद्वानों के प्रवचनों व कक्षाओं का लाभ मिला।

शाहगढ, हीरापुर, अमरमऊ, दलपतपुर, सागर आदि स्थानों से लगभग 300 साधर्मियों ने पधारकर प्रवचनों व कक्षाओं का लाभ लिया। कार्यक्रम के संयोजक पण्डित राहुलजी शास्त्री थे।

नि:शुल्क मंगवा लें !

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर तथा पताशे प्रकाशन संस्था घटप्रभा (बेलगांव-कर्नाटक) द्वारा प्रकाशित **गुणस्थान विवेचन** (280 पृष्ठ), **जीव जागा-कर्म भागा** (190 पृष्ठ) एवं श्रीमती कस्तूरी देवी पुगलिया की स्मृति में श्री जुगराजजी पुगलिया सरदारशहर की ओर से **मोक्षमार्गप्रकाशक** - ये तीनों पुस्तकें स्वाध्यायार्थ नि:शुल्क भेंट दी जा रही है। मात्र एक पोस्टकार्ड द्वारा अपनी इच्छित पुस्तक हेतु अपना पूर्ण पता पिनकोड सहित प्रेषित करें, साथ ही अपना संपर्क नम्बर भी देवें। डाक व्यय भी संस्था द्वारा ही वहन कर पुस्तकें आपको भेज दी जायेगी। ध्यान रहे पोस्टकार्ड ही लिखें, ई-मेल, एस.एम.एस. न करें। दिनांक 31 मई तक प्राप्त होने वाले पोस्टकार्ड के आधार पर 10 जून 2015 से पुस्तकें डिस्पेच करना प्रारम्भ किया जायेगा।

- नि:शुल्क वितरण विभाग, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,
ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015 (राज.)

हार्दिक बधाई !

जयपुर (राज) : श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धांत महाविद्यालय के स्नातक पण्डित संभवजी शास्त्री पुत्र श्री शीतलचंदजी जैन नैनधरा (म.प्र.) का केन्द्रीय विद्यालय में टी.जी.टी. संस्कृत अध्यापक के पद पर चयन हुआ है। वर्तमान में मध्यप्रदेश में शासकीय शिक्षक हैं। आप राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान जयपुर से 'आचार्य शुभचन्द्र विरचिते ज्ञानार्णवे प्ररूपितानां पंचमहाव्रतानां समीक्षात्मकमध्ययनम्' विषय पर पी.एच.डी. कर रहे हैं।

टोडरमल महाविद्यालय एवं वीतराग-विज्ञान परिवार की ओर से हार्दिक बधाई !

आगामी कार्यक्रम ...

सम्यक्त्व-योग आदि मार्गणा शिविर

देवलाली-नासिक (महा.) में दिनांक 12 से 16 जून 2015 तक करणानुयोग शिविर पुन: आयोजित किया जा रहा है। इस अवसर पर डॉ. उज्ज्वला शहा द्वारा प्रतिदिन 6-6 घंटे कक्षाओं का लाभ मिलेगा। आपके आने की पूर्व सूचना देवलाली/मुम्बई ऑफिस में अवश्य दें, ताकि आपकी समुचित व्यवस्था की जा सके। आवास व भोजन की व्यवस्था नि:शुल्क रहेगी। सभी साधर्मीजन 'सम्यग्ज्ञानचंद्रिका जीवकाण्ड भाग 1 व 2' ग्रंथ अपने साथ लावें। ये शास्त्र देवलाली में सशुल्क उपलब्ध होंगे।

संपर्क सूत्र - वीतराग वाणी प्रकाशक, 157/9, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुम्बई-400022, फोन - 022-24073581; पूज्य कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, कहान नगर, लाम रोड, देवलाली, जिला-नासिक, 422401 (महा.), फोन - 0253-2491044

R.N.I. No. 38278/83 Postal Regd. No. JaipurCity/421/2015-17

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में विराजमान होने वाली प्रतिष्ठेय 30 चौबीसी प्रतिमाओं में से एक चौबीसी का विहंगम दृश्य

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.
सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय , नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्रा.लि., जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- Pandit Todarmal
Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में 27900 स्क्वायर फीट के हॉल का आंतरिक दृश्य